* श्रीसर्वेश्वरो जयति *

* श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः *

श्रीलघुस्तवराजस्तोत्र (श्रीनिम्बार्क-वन्दना)

['शोभनार्था' हिन्दी टीका सहित]

मुद्रापक तथा प्रकाशक—

महात्मा पं० श्रीनन्दलालदास।

श्रीगुरुः शरणम् ।

धन्यवाद

"परोपकाराय सतां विभूतयः"

'परोपकारः पुण्याय" अर्थात् परोपकारके समान कोई पुण्य नहीं—इस कथन को लक्ष्यमें रख कर आरा प्रान्त निवासिनी, परम वैष्णवी एवं अनेक साम्प्रदायिक ग्रन्थ प्रकाशक श्रीयुक्त बाबा नन्दलालदासजी महाराजकी परम भक्ता श्रीमती माधुरीदासी बाई जो कि भक्तिरससे आप्लुत और योग्य विदुषी हैं, आप ही ने पाठक भक्तजनों का कल्याणसाधन करनेवाले, कोमलकान्तपदावली युक्त सुमधुर और मनोहर तथा परमपावनकारी 'अंलघुस्तवराज' को पं० राधिकादासकृत भाषा टीका सहित प्रकाशित कराया है, इससे सहस्रशः वैष्णवों का श्रेयःसाधनरूप सर्वश्रेष्ठ और अपरिमित उपकार होगा । अतः श्रीमाधुरीदासीजीको कोटि-कोटि साधुवाद-धन्यवाद !!

आशा है आप आगे भी इसी प्रकार परोपकार द्वारा पुण्यार्जन करती रहेंगी ।

विनीत निवेदक—

ब्रह्मचारी—

बिहारीशरणजी, पं० श्रीराधिकादासजी ।

॥ श्रीसर्वेश्वरो विजयतेतराम् ॥

॥ श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ॥

श्री श्रीनिवासाचार्यवर्यप्रणीत-

श्रीलघुस्तवराजस्तोत्र

पं० श्रीराधिकादास कृत-

"शोभनार्था" हिन्दी टीका सहित

पं० श्रीराधिकादासद्वारा संशोधित ।

मुद्रापक तथा प्रकाशक—

परम विरक्त

महात्मा पं० श्रीनन्दलालदासजी.

वृन्दावनस्थ अग्रवाल प्रेस में मुद्रित ।

प्रथम संस्करण १००० प्रति | सं० १९९५ वि० सन १९३८ ई० | मूल्य श्रीनिम्बार्कपदैक निष्ठा

श्रीआचार्यपरम्परा ।

१ श्रीहंसनारायण
२ श्रीसनकादिकभगवान्
३ देवर्षिश्रीनारदभगवान्
४ वाक्यार्थ प्रणेता–
श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्र
५ भाष्यकारश्रीश्रीनिवासाचार्य
६ श्रीविश्वाचार्य
७ श्रीपुरुषोत्तमाचार्य
८ श्रीश्रीविलासाचार्य
९ श्रीस्वरूपाचार्य
१० श्रीमाधवाचार्य
११ श्रीबलभद्राचार्य
१२ श्रीपद्माचार्य
१३ श्रीश्यामाचार्य
१४ श्रीगोपालाचार्य
१५ श्रीकृपाचार्य
१६ जान्हवीकार श्रीदेवाचार्य
१७ सेतुकाकार–
श्रीसुन्दरभट्टाचार्य
१८ श्रीपद्मनाभभट्टाचार्य
१९ श्रीउपेन्द्रभट्टाचार्य
२० श्रीरामचन्द्रभट्टाचार्य
२१ श्रीवामनभट्टाचार्य
२२ श्रीकृष्णभट्टाचार्य
२३ श्रीपद्माकरभट्टाचार्य
२४ श्रीश्रवणभट्टाचार्य
२५ श्रीभूरिभट्टाचार्य
२६ श्रीमाधवभट्टाचार्य
२७ श्रीश्यामभट्टाचार्य
२८ श्रीगोपालभट्टाचार्य
२९ श्रीचलभद्रभट्टाचार्य
३० श्रीगोपीनाथभट्टाचार्य
३१ श्रीकेशवभट्टाचार्य
३२ श्रीगांगलभट्टाचार्य

३३ जगद्विजयि श्रीकेशव-
काश्मीरिभट्टाचार्य
३४ श्रीश्रीभट्टदेवाचार्य
३५ श्रीहरिव्यासदेवाचार्य
३६ श्रीमत्स्वमूदेवाचार्य
३७ श्रीकणेहरदेवाचार्यजी
३८ श्रीनारायणदेवजी
३९ श्रीहरिदेवजी
४० श्रीश्यामदेवजी
४१ श्रीश्यामदामोदरदेवजी
४२ श्रीसुरतदेवजी
४३ श्रीसहजदेवजी
४४ श्रीरतनदेवजी
४५ श्रीज्ञानदेवजी
४६ श्रीवृन्दावनदेवजी
४७ श्रीरामशरणदेवजी
४८ श्रीधर्मदेवजी
४९ श्रीसेवादासजी
५० श्रीधर्मदासजी
५१ श्रीभक्तवत्सलशरणदेवजी
५२ वर्तमान परम विरक्त
पं० श्रीनन्दलालदासजी
५३ श्रीराधाशरणदासजी
५४ श्रीमधुसूदनदासजी
५५ श्रीमाधुरीदासजी
५६ श्रीरासविहारीदासजी
५७ श्रीविहारिणीदासजी
५८ श्रीरामकृष्णदासजी

* श्रीसर्वेश्वरो विजयते *

॥ श्री ६ भगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः ॥

समर्पण

श्री ६ सुदर्शनावतार श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्र
पादपीठाधिष्ठित
श्रीमत्स्वभूदेवाचार्यचरणचरणाश्रिताश्रित
गुरुवर्य्य

श्रीभक्तवत्सलशरणदेवजी महाराज !!!

आपकी पवित्र स्मृति में
श्रीलघुस्तवराज की 'शोभनार्था' भाषा टीका
सादर, सप्रेम, सविनय
समर्पित है।

समर्पक—
आपका चरणसेवक नन्दलालदास
धीरजलाल की बगीची,
श्रीधाम वृन्दावन जि० मथुरा।

भूमिका

श्रीहरिं गुरुदेवञ्च नत्वा भक्तिसमन्वितः।
श्रीलघुस्तवराजस्य भूमिकेयं लिखाम्यहम् ॥

श्रीलघुस्तवराज में श्रीसनकसम्प्रदाय के प्रचारक आद्याचार्य श्रीमान् सुदर्शनावतार श्री निम्बार्काचार्यजीकी स्तुति है, जिसका प्रणयन उनके प्रियपट्टशिष्य श्रीश्रीनिवासाचार्यजी ने किया है। स्तोत्र की प्रशंसा करना भी सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा। इसके पाठ की फलश्रुति के लिये अन्तिम श्लोक के 'भक्तिं देहि पदाम्बुजे' इस अन्तिम चरण पर ध्यान दीजिये। श्रीहरिगुरुभक्ति ही इस स्तोत्र के पाठादि का फल है। श्रीवृन्दावन (धीरज़लाल की बगीची) निवासी श्रीनन्दलालदासजी महाराज ने मुझे आज्ञा दी कि उक्त स्तोत्र की संक्षिप्त भाषा टीका लिखूं, उनकी आज्ञानुसार वैशाख कृष्णा ६ गुरुवार सं० १९९५ को यह भाषा टीका लिख कर पूरी की। 'श्रीनिम्बार्क भगवान' के परिचय के लिये साम्प्रदायिकों को वंशीवटनिवासी श्रीयुक्त पं० किशोरदास जी लिखित 'श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र' और मेरी लिखित 'ब्रह्मसूत्र भाष्यद्वय की भूमिका' देखना चाहिये, तथाऽपि अति संक्षिप्त परिचय लिखना अनुचित न होगा।

आप (श्रीनिम्बार्क भगवान्) 'सुदर्शन महाबाहो कोटिसूर्य समप्रभ। अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय।' 'हे कोटिसूर्यतुल्य तेजस्वी महाबाहु सुदर्शन! अज्ञान अन्धकार से आवृतहृदय जीवों को भागवत मार्ग या धर्म दिखाओ।' इस श्रीकृष्णाज्ञानुसार द्वापर के अन्तिम और कलि के प्रारम्भकाल में दक्षिण तैलङ्ग देशस्थ वैदूर्यपत्तन में गोदावरी के तट पर श्रीअरुण ऋषि के यहाँ माता जयन्ती से प्रकट हुये और श्रीनारद भगवान् से दीक्षित हो आपने श्रीसनक सम्प्रदाय का ऐसा प्रचार किया कि सम्प्रदाय आपके नाम से प्रचलित होगई और आप उक्त सम्प्रदाय के आद्याचार्य भी कहलाते हैं। अन्त में साम्प्रदायिक बन्धुओं से इस स्तोत्र के पठन-पाठन का अनुरोध करते हुये इतना निवेदन करना परमावश्यक समझता हूँ कि यह भाषा टीका श्रीहरिव्यास देवाचार्य निर्मित 'श्रीगुरुभक्ति प्रकाशिका' नामक सं० टीका के आधार पर लिखी है। इसमें जो सुन्दरता है, वह श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी की समझिये और त्रुटियाँ मेरी। श्रीनन्दलालदासजी के उत्साहित करने से ही यह कार्य सम्पन्न हुआ है। अतः इसकी तैयारी का अधिकांश श्रेय उन्हीं को है। वे अपने हैं अतः उन्हें धन्यवाद तो किन शब्दों में दूं? यदि इस टीका को वैष्णवों ने पसन्द किया तो उक्त स्तोत्र की विस्तृत टीका लिखने का प्रयत्न करने का विचार है।

सर्वसज्जानानुगत—

पं० राधिकादास

* श्रीसर्वेश्वरो विजयते *

॥ श्रीमन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रेभ्योऽष्टाङ्गयुक्तवपुषा नतिः ॥

श्रीलघुस्तवराजस्तोत्रम्

अथ भाषाकारकृतमङ्गलम् ।

सुदर्शनं स्वदर्शनेन भक्तवृन्दनन्दनम् ॥
प्रणम्य प्राकृतैः पदैर्लघुस्तवं लिखाम्यहम् ॥१॥

श्री श्रीकन्याणभृत्याख्यगुरूणां कृपया मुदा ॥
'शोभनार्था' कृता टीका राधिकादाससूरिणा ॥ २ ॥

ॐ जय जयेङ्गितज्ञाता नियमानन्द आत्मवान् ॥
नियमेन वशे कुर्वन्भगवन्मार्गदर्शकः ॥१॥

शब्दार्थ = नियमानन्द-हे श्रीनिम्बार्कभगवन् ! जय, जय आपकी जय हो, जय हो। इङ्गितज्ञाता—(आप भक्तों की) चेष्टा-क्रिया के जानने वाले हैं। आत्मवान्-आत्मा श्रीकृष्ण को प्राप्त किये हैं। नियमेन, वशे, कुर्वन्-नियम के द्वारा (श्रीकृष्णको) वश करते हुये (आप) भगवन्मार्गदर्शकः—श्रीवैष्णवजनों के मार्ग को दिखाने वाले हैं।

टीका—हे श्रीनियमानन्द ! आप उत्कर्ष को प्राप्त हों अथवा आपके दिव्य यशका सर्वत्र विस्तार हो। आप हरिभक्तों के सर्व चेष्टित को जानते हैं। (इस कथन से श्रीनिम्बार्क भगवान् की सर्वज्ञता सूचित हुई)। क्योंकि आत्मवान् अर्थात् आपने सब के आत्मारूप श्रीकृष्ण परमात्मा को प्राप्त किया है।

'आत्मा' का अर्थ 'श्रीकृष्ण' भागवत, स्कं० । १ । में लिखा है, यथा 'कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।' (इन श्रीकृष्ण को सब जीवों का आत्मा-अन्तर्यामी अथवा परमात्मा समझिये)। वेद की श्रुति भी है-'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः' आत्मा (परमात्मा) दर्शनादि करने योग्य है।' नियम के द्वारा श्रीगोपालकृष्ण को वश में कर भगवन्मार्ग अथवा श्रीभागवत (वैष्णव) धर्म बोधक सत्सम्प्रदाय (श्रीसनक-सम्प्रदाय किंवा श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय) के प्रचार करने वाले हैं। श्रीकृष्ण को वश करना श्रीभागवत से सिद्ध है। "मयि निर्बद्ध-हृदयाः साधवः समदर्शनाः। वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ।" स्कं० । ११ । 'मेरे चरण कमलों में आबद्ध हृदय समदर्शी सज्जन भक्ति-प्रेम से मेरे को वश में कर लेते हैं,' इ० ॥ १ ॥

पाखण्डद्रुमखण्डानां दाहकः पावकोत्तमः ॥
गर्वपर्वतदम्भोलिः काम्यकर्माहिपक्षिराट् ॥२ ॥

शब्दार्थ = पाखण्डद्रुमखण्डानाम्-पाखण्डरूप वृक्षखंडों के।

दाहकः = जलानेवाले । पावकोत्तमः = उत्तम अग्निरूप हैं। गर्वपर्वतदम्भोलिः (और आप) गर्वरूप पर्वत को चूर्ण करने के लिये वज्रतुल्य हैं । काम्यकर्माहिपखिराट् = सर्परूप सांसारिक कर्मोंको नष्ट करनेके लिये गरुड़ के समान (बलवान्) हैं ॥ २ ॥

टीका—पाखण्ड रूप झाड़खंड को अंधाधुन्ध जलाने के लिये आप दिव्य अग्नि के समान तेजस्वी हैं अर्थात् वेदबाह्य किंवा वेदविरुद्ध पाखण्ड (ढोंग) फैलाने वाले कापालिक-अघोरादि मतों को श्रुति स्मृति के प्रमाणों से खण्डन करके नष्ट करने वाले हैं ।* और आप, गर्व-अभिमान अथवा अहङ्काररूप पर्वत को चूर्ण या नाश करने के लिये वज्र के समान कठोर हैं। 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि । लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति' अर्थात् (समयानुसार) वज्र से भी कठिन और पुष्प से भी कोमल हृदय वाले अलौकिक महत्पुरुषों के चित्त की थाह कौन पा सकता है ? कोई नहीं ! (पर्वत सबसे ऊँचा होता है अतः अहङ्कार को पर्वत-पहाड़ की उपमा दी गई) काम्य नाम कामनायुक्त या सकामकर्म संसारबन्धन में बाँधने वाले अथवा बारम्बार आवागमन-जन्ममरण का हेतु होने से सर्परूप हैं उन सर्परूप काम्य

---

* पाखण्ड का शब्दार्थ है पाप का खण्ड चिन्ह, देखिये श्रीमद्भागवत स्कंध ४।१९।२३ से २५ तक ।

कर्मों से छुड़ाने (या निवृत्त करने) के लिये आप पक्षिराज-गरुड़ तुल्य पराक्रमी हैं। (अतएव आप सांसारिक जनों के कल्याणसाधनमें सर्वथा समर्थ होने से बारंबार वन्दना करने योग्य और धन्य हैं ।

काम्य किंवा सकाम कर्म (कामनायुक्त शुभ कर्म) भी बन्धनकारक होने से सर्परूप कहे गये । यज्ञ यागादि शुभकर्म भी कामनायुक्त होने से आवागमन के चक्र या संसार-चक्र में ही पुनः पुनः जन्ममरण द्वारा घुमाया करते हैं, इसका प्रमाण देखिये—

"त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते । × ×
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ।"
गीता अ० ६ । २० । २१ ॥

भावार्थ—वेदोक्त कर्मी यज्ञयागादि करने वाले कर्मकांडी लोग सोमपान से पापरहित हो यज्ञों के द्वारा देवपूजन करके स्वर्गप्राप्ति की प्रार्थना करते हैं। (वे यज्ञकर्मा पवित्र इन्द्रलोक या स्वर्ग में पहुँच कर वहाँ दिव्यभोग सुखों को सानन्द भोगते हैं) विशाल वैभवयुक्त स्वर्गसुख को भोगकर वे लोग अपने पुण्यकर्मों की अवधि समाप्त होने पर किंवा पुण्य क्षय हो जाने पर मृत्युलोक में जन्म लेते हैं, इस प्रकार सकाम कर्मों के

चक्कर में पड़े हुये जीव बारंबार जन्ममरण रूप आवागमन के जाल में फँसे रहते हैं ॥ २ ॥ × (अस्तु ! अब इससे यह सिद्ध हो गया कि आप संसार के सकाम कर्मी जीवों को आसक्ति से छुड़ाकर योगमार्ग (भक्तियोग) में प्रवृत्ति करने वाले हैं ॥ २ ॥ +

मत्तवादिगजेन्द्राणां पञ्चाननमहोज्ज्वलः ।
कामादिविषयाब्धीनां शोषकः कुम्भसम्भवः ॥३॥

शब्दार्थ—मत्तवादिगजेन्द्राणाम् = वाद विवाद करने में प्रवीण बड़े उन्मत्त दिग्गजरूप वादी जनों के (परास्त करने को) पञ्चाननमहोज्ज्वल = महा बलवान् सिंह के समान (आप ही हैं)। कामादिविषयाब्धीनाम् = विषयवासना रूप समुद्रों को। कुम्भसम्भवः (इव) शोषकः = अगस्त्य मुनि के समान सुखाने वाले हैं ॥ ३ ॥

टीका—श्रीभगवन्निम्बादित्याचार्यजी के देव दुर्लभ लोकोत्तर गुणों का वर्णन करते हुये श्रीभाष्यकार महाराज स्तुति करते हैं—

× *देखिये श्रीमद्भागवत'-*

+ *सर्वकर्म श्रीकृष्णार्पण करना भक्ति का लक्षण है-"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।" भाव यह कि, होम, दान, तप तथा सर्वकर्म श्रीकृष्णार्पण करना चाहिये। श्रीमद्भगवद्गीता अ०९।२७॥*

हे श्रीगुरुदेव ! आप, उन्मत्त हाथियों के समान कुतर्कियों को अथवा वाद विवाद करने में बड़े चतुर बनने वाले महा-वाचाल मदमत्त गजेन्द्रों के तुल्य वातुल (पागल) कुतर्क-वादियों को पछाड़ने के लिये महापराक्रमी सिंह समान किंवा साक्षात् श्रीनरसिंहरूप ही हैं । (जैसे तमःप्रिय या मोहरूपी रात्रिप्रिय उलूक साक्षात् सूर्य के सामने आने पर भाग जाते हैं वैसे ही अज्ञ कुतर्की आपके महोज्ज्वल, कोटि सूर्यसमप्रभ प्रकाश-तेज को न सहन कर परास्त हो भाग जाते हैं ।)

कामादि विषयरूप सागर को शोषण करने के लिये श्रीआचार्यवर्य निम्बभानु, श्रीअगस्त्यजी के समान हैं (विषय-वासना का कभी पार नहीं मिलता, विषयसुख प्राप्त होने पर भी सुख भोग की लालसा बढ़ती ही रहती है अतः विषयों को समुद्र की उपमा दी गई ।) सब पापों का मूल काम है, अग्नि के समान सर्वभक्षी अर्थात् कभी तृप्त होने वाला नहीं, महा पापरूप होने से ज्ञान को दबाने वाला और महा दुर्जय है, इसकी प्रचण्डता का कहाँ तक वर्णन किया जाय ? श्रीपार्थ-सारथी सर्वेश्वर श्यामसुन्दर के वक्तव्यानुसार सर्वप्रथम इस दुर्धर्ष काम को ही समूल नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये ।) हे श्रीसुदर्शनावतार निम्बमित्राचार्य ! आपके चरणशरणागत भक्तजन तो श्रीचरणकमलों का चिंतन करते ही सर्वविषय-वासनाओं पर विजय पा जाते हैं । श्रीचरणों की बलिहारी ! ॥३॥

भक्त्यौषधिलतानाञ्च पोषकश्चन्द्रशीतलः ।
सम्प्रदायप्रबोधाय दीपकोध्वान्तनाशकः ॥४॥

शब्दार्थ—भक्त्यौषधिलतानाञ्च—और (आप) भक्ति रूप औषधलता के। पोषकः, चन्द्रशीतलः—शीतलचन्द्रवत् पालन-पोषणकर्त्ता हैं । सम्प्रदायप्रबोधाय-स्वसम्प्रदाय का परिज्ञान प्रकाश करने में। ध्वान्तनाशकः, दीपकः—मोहान्धकारनाशक प्रदीप के समान हैं ॥ ४ ॥

टीका—श्रीराधिकारमणकी प्रेमलक्षणा भक्ति की उत्कण्ठित या उत्कट अभिलाषासे प्रेमविह्वल हृदयवाले श्रीभाष्यकारजी भक्तभयभञ्जन श्रीमान् जयन्तीनन्दनके गुणगान करते हैं—भवरोग नाम पुनः पुनः जन्ममरणरूप संसारका सर्वोपरि महारोग है यद्यपि काम, क्रोध, लोभादिक सांसारिक रोगों की गिनती नहीं है। जीव के पीछे रागद्वेष, भय अभिमान, मोह ममतादि अगणित रोग लगे रहकर अल्पज्ञ असमर्थ और परवश जीवगण को व्याकुल किया करते हैं तथाऽपि सबसे प्रधान तो (श्री) 'आवागमन' जी महाराज ही हैं । इनके भँवर में डूबते उतराते जीवों का मुक्ति पाना छूटना असम्भव नहीं तो साधनसाध्य भी नहीं है, अस्तु। इस मुख्य महारोग (संसार बन्धन) से छूटने में एक मात्र श्रीकृष्ण की प्रेमरूपा भक्ति ही औषधि है, परन्तु ध्यान रहे कि प्रेम-भक्ति साधनों

से नहीं मिलती । श्रीराधिकानाथ गोपालकृष्ण नन्दनन्दन गोपिकावल्लभ श्रीविहारीजी जिसके ऊपर विशेष दया दर्शावें वही धन्यजन्माजीव श्रीभक्तिरानी को पा सकता है। उसी संसृतिसर्वक्लेशनाशिनी भक्तिरूपा ओषधिलता की रक्षा और पालनपोषण करने के लिये चन्द्रतुल्य शीतल आप ही हैं। 'पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः' इस श्रीमुख वाक्य से, ओषधिपोषण कर्त्ता सोम नाम चन्द्रमा ही होता है। (श्री) 'भक्तिलता' शब्द का अभिप्राय यह है भक्ति के अनेक प्रकार हैं। नवधा-भक्ति तो प्रसिद्ध ही है, जैसे—

'श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥'

श्रीमद्भागवते स्कं. ७।

और आप, स्वसम्प्रदाय के परिपूर्ण ज्ञानरूप प्रकाश फैलाने के लिये प्रज्वलित दीपकके समान हैं। अर्थात् जैसे दीपक अँधेरे को नष्ट करता है वैसे ही आचार्यचरण श्रीसनकानुगामी भक्तवृन्द के मोह-तम को दूर करने वाले हैं॥४॥

चौथे श्लोक का संक्षिप्त आशय अगले श्लोक से प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है—

संसाररोगनाशाय निम्बतुल्यश्च भक्तिदः।
मोहासुराय नृहरिर्ज्ञानदः सम्प्रदायिनाम्॥

संसारकूपमग्नानां करावलम्बदायकः।
सुशीतलमना नित्यं माधुर्येण विराजते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—संसारकूपमग्नानम् संसाररूप कूप में डूबे हुये (जीवोंको) करावलम्बदायकः—निज करकमलोंका अवलम्बन देकर [उनका उद्धार करने वाले हैं] सुशीतलमना = अतिशय शान्त मन से। नित्यम् = निरन्तर, सदा, अखण्ड। माधुर्येण, विराजते = माधुर्यादि, अनेक कल्याण गुणों से युक्त किंवा सर्व विध माधुर्य से परिपूर्ण हो सुशोभित हो रहे हैं ॥ ५ ॥

टीका—कूप रूप संसार में पड़े हुए अर्थात् स्वर्गादि अनित्य फलदायक सकाम कर्मासक्त होने से संसृति पाश में फँसे हुये या संसार रूपी कुएँ में डूबे आर्त्त जीवों का वैष्णवी दीक्षादि के द्वारा उद्धार करनेवाले आप मानो साक्षात् कारुण्यमूर्त्ति ही हैं। भवसागर-मग्न जीवों के प्रति आपकी अपार दया का यह एक निदर्शन (नमूना) मात्र है, भाव यह कि आप दीनबन्धु पतितपावन और जीवमात्र पर अतिशय कृपालु धाराधर मेघ के समान कृपा-वारि की वर्षा करनेवाले हैं।

भावार्थ—श्रीमान् अरुणनन्दन या शुभ दर्शन श्रीसुदर्शन (श्रीनिम्बभानु) कैसे सुन्दर शोभायुक्त विराजमान होरहे हैं। ध्यान से दर्शन कीजिये—'कोटि सूर्य तुल्य प्रतापवान् या अति तेजस्वी साक्षात् तेजोराशि होने पर भी आपका मन (जिस मन

का वेग-चञ्चलता जगत्प्रसिद्ध है, फिर भी स्थिर अचल (श्रीकृष्ण चरणारविन्द में समाहित एकाग्र किंवा तल्लीन होने से) अतिशय शान्त-शीतल अतएव 'निर्गुण' सुख या परमानन्द से परिपूर्ण-भरपूर है। आपके दिव्यमङ्गल विग्रह (शरीर) की कान्ति अति सुन्दर श्यामवर्ण है अर्थात् आप साक्षात् श्रीकृष्ण-तुल्य श्यामसुन्दर हैं। मस्तक पर से लहराते हुये कृष्णवर्ण के केश भ्रमरपंक्ति को लज्जित कर रहे हैं, उन्नत देदीप्यमान ललाट के कान्तितेज किंवा प्रभासे चकितचित्त प्रभाकर भी अपना मुख छिपाने के लिये मानों स्थान की खोज में निरन्तर चक्कर लगा रहा है। प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गका वर्णन कौन करे? जब कि मुख्य शोभा का वर्णन या बखान भी असम्भव प्राय ही है, (तथापि कुछ और भी) भ्रुकुटि के दर्शन कर पुष्पधन्वा का धन्वा भी व्रीड़ाविमूढ़ हो रहा है, विशाल आयत लोचन-युगल की सौन्दर्यमाधुरी से ही टक्कर लेने के लिये प्रफुल्ल इन्दीवर [नील कमल के] दल के दल बहुत से दल बाँध कर आये, परन्तु उनके सर्व दल निर्बल ठहरे और वे बिचारे सर्व कमल दल लाज के मारे जलाशय में मुँह छिपाने की चेष्टा करते हैं, किन्तु सदय जल भी इन बेचारों पर दया न करके इनका लज्जित मुख छिपाने के स्थान में और ऊपर को ऊँचा करके सब को दिखाकर इन्हें अत्यधिक लज्जित करता दिखाई देता है। नासिका के गठन सौन्दर्य की उपमा खोजने पर मिली नहीं,

ओष्ठद्वयकी लालिमा बेजोड़ सिद्ध हुई बिचारा बिंबाफल तो लाज का मारा लाल हो गया। गोल कपोलयुगल की सुंदरता अरुणता को देख स्थलकमल स्थल में धँस गया। मुखचन्द्र की आल्हाद-आनन्दजनकता और तेज को देख कर चन्द्रसूर्य्य भी चकित रह गये। आपकी सौन्दर्यमाधुरी, क्षमादयाशान्ति आदि सर्वकल्याणगुणगण एवं मृदु हास्यादि रूप सर्वमृदु माधुरीयुक्त होकर आप (सुखासीन) विराजमान हैं। (बोलो सर्व कल्याण-गुणाकर श्रीनिम्बार्क भगवान् की जय ! जय !!) ॥ ५ ॥

सुखदाता भवच्छेत्ता तापत्रयविनाशकः।
श्रीकृष्णपूजनानन्दी सर्वदा शुद्धवेषवान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—सुखदाता = (आप वैष्णव भक्तों के) आनन्द दायक हैं। भवच्छेत्ता-संसारक्लेशनाशक (तथा)। तापत्रय विनाशकः-त्रिविधदुःख के दूर करने वाले भी हैं। श्रीकृष्ण-पूजनानन्दी-श्रीकृष्णगोपालजी के नित्य पूजन से सदा आनन्दित रहने वाले। सर्वदा, शुद्धवेषवान्-नित्य शुद्धवेषधारी हैं।

श्रीहरिप्रियाचार्य या श्रीनिम्बादित्यभगवान् के सुखदातृत्व एवं संसारनाशकत्वादि की प्रेमपूर्वक प्रशंसा करते हुये स्तुति करते हैं—

हे श्रीमदाचार्यचरणेन्दीवर ! आप श्रीकृष्णशरणागत भक्तवृन्द को निरतिशय सुख-परमानन्द प्रदान करने वाले हैं। सर्वश्रेष्ठ सुख मिलने का एकमात्र निमित्त श्रीराधिकाप्राणप्यारे

श्यामसुन्दर श्रीगोपालकृष्णके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण करना ही है अन्यथा त्रिकाल में भी नित्य अखण्ड निरतिशय सुखशान्ति की प्राप्ति असम्भव ही है, अस्तु। श्रीकृष्णशरण से पापजन्मा महापातकी पुराने पापी भी परम गति रूप सर्वोत्तम शाश्वत (नित्य) शान्तिरूप सुख पाते हैं। "मांहि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। × × ×तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ श्रीगीता अ० ६॥ ३२।" हे परम दयामूर्त्ते श्रीचरणों की अहैतुकी दया से सांसारिक सर्वबन्धन छिन्न भिन्न हो जाते हैं। आपकी सहज कृपा से कितने जीव कर्मरूप भवबन्ध से छूट गये इसकी गणना भी प्रायः असम्भव होगी। अपने स्वाभाविक परदुःखकातरतारूप दयागुणके द्वारा आप आध्यात्मिक आधिभौतिक एवं आधिदैविक-त्रिविध दुःखोंके विनाश करने वाले हैं। हे साक्षात् श्रीकृष्णरूप गुरुदेव! श्रीचरणों ने अम्बरीषादि भक्तवृन्द को तो सर्व दुःखों से मुक्त किया ही था किन्तु भगवद्रूप से पूतना, केशी, कंसादि सदृश असुरों को, अजामिल, गणिका, गृद्ध, व्याधादि जैसे महापामर पतितों को भी सर्वदुःख से विनिर्मुक्त कर परमपदरूप अखण्ड शान्ति सुख भी प्रदान किया। इस दयालुता की कोई सीमा भी है? तभी तो श्रीउद्धवजी ने विदुरजी से कहा है—

"अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणम्व्रजेम॥"

आश्चर्य है कि जिस पूतना राक्षसी ने बालकृष्ण को घात करने की इच्छा से अपने स्तन से लगे हुये कालकूट हलाहल विषपान करवाया उस दुष्टा को भी अपनी माता के समान मान परमपद प्रदान किया तब श्रीकृष्ण (अथवा श्रीकृष्णरूप श्रीगुरु-देव) से अधिक दयालु कौन होगा जिसकी शरण वरण की जाय। भाव यह कि दुःखकातर जीवों को श्रीगुरुचरणशरण ग्रहण करना योग्य है, अस्तु। श्रीकृष्ण के पूजन से ही आप नित्यानन्द में निमग्न रहते हैं, कारण श्रीकृष्ण के नाम संकीर्तन, स्मरण, ध्यान, भजन सेवनरूप पूजन से बढ़कर कोई आनन्द नहीं है साथही श्रीकृष्णपूजन (श्रीकृष्ण) को पाने की कूँची है, भला श्रीकृष्णप्राप्ति से अधिक अन्य आनन्द क्या होगा ? पुनः आप नित्यशुद्धस्वरूप अथवा श्रीभगवद्वेष धारण करने वाले अतएव धन्य हैं, कृतकृत्य हैं। श्रीचरणों में कोटि कोटि साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकृत हों ॥ ६ ॥

मू०–आनन्दाश्रुकलापूर्णः सानुरागसुधाऽन्वितः।
अहम्ममेतिदौर्जन्यनाशकोबुद्धिदः स्वयम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ–आनन्दाश्रुकलापूर्णः=आनन्दके अश्रुओंसे भरे हुये नेत्रवाले। सानुरागसुधाऽन्वितः-अनुराग प्रेमरूपा भक्ति से युक्त। अहम्ममेतिदौर्जन्यनाशकः-मैं, मेरा आदि अभिमानरूप दुर्जनतानाशक। बुद्धिदः, स्वयम्-आप स्वयं सद्बुद्धि देने वाले हैं ॥ ७ ॥

टीका—आपका हृदयकमल श्रीकृष्णप्रेम से परिप्लुत होकर उमड़ता रहता है जिससे आनन्द या हर्ष की अश्रुधारा प्रवाहित हुआ करती है अतएव श्रीमान् के नेत्रनलिन निरन्तर हर्षाश्रुधारा के अखंड प्रवाह से परिप्लावित रहते हैं अतः आपकी गुणगरिमा को प्रकट करनेवाला, 'आनन्दाश्रुकलापूर्णः' पद अति सुन्दर प्रयुक्त हुआ है। अनुराग नाम प्रेम का है, प्रेमरूपा सुधा-अमृत से भरपूर हृदयवाले हे श्रीआचार्यदेव! श्रीपदपद्मद्वय में बारंबार नमस्कार। श्रीमदाद्याचार्यश्रीनिम्बार्कचरणसरोजचंचरीक शङ्खावतार श्रीमन्धकार महाराज हम सब पर विशेष कृपा प्रदर्शित कर रहे हैं अतः हमारे मायाबन्धन को छिन्न भिन्न करने के अभिप्राय से श्रीआचार्यचरणकमलद्वय की सेवा में अतिशय प्रेमपुरस्सर प्रार्थना करते हैं, कि श्रीहरिकरकमललालित श्रीसुदर्शन (चक्र) के साक्षात् अवतार स्वरूप होने से अर्थात्—

'सुदर्शन महाबाहो कोटिसूर्य समप्रभ।
अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गम्प्रदर्शय॥'

"हे महाबाहो सुदर्शन जी! हे कोटि सूर्य तुल्य मोह तिमिर नाशक किंवा तेजस्वी! अज्ञान-मोहमायाविमूढ़ अज्ञ महामोहान्ध जीवों को ज्ञाननेत्र प्रदान कर एवं श्रीभगवान् की प्राप्ति का मार्ग दिखाकर अथवा श्रीभागवत (सर्ववेदसम्मत-श्रीवैष्णव) धर्म का उपदेश कर उन सांसारिक जीवों को कृतार्थ करो।" इस भगवत् आज्ञा से तथा अपने स्वाभाविक कारुण्य

गुण के प्रताप से, आप 'अहम्मम' अर्थात् 'मैं मेरा' रूप दुर्जनसुलभ दोषों के नाशकर्ता महाकारुणीक परमकृपामूर्ति होने से सर्वाराध्य एवं परमपूज्य हैं। आपकी बारम्बार जय हो! दौर्जन्य दोष नष्ट करने के लिये आप स्वयं सद्बुद्धि प्रदान करने वाले हैं। [एवं सततयुक्तानाम्भजतान्प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥] अर्थात् नित्ययुक्त-निरन्तर श्रीचरणों में मन या चित्त को लगा कर प्रेम प्रीति पूर्वक भजन सेवन करनेवालों को ऐसा बुद्धियोग किंवा ज्ञानयोग प्रदान करते हैं, जिसके द्वारा श्रीचरणों को वे भक्तगण सहज ही प्राप्त कर लेते हैं। (श्रीचरणों की प्राप्ति या उनकी कृपा से ही 'अहम्मम' रूप दौर्जन्य नष्ट हो जाता है, अन्यथा 'मैं, मेरो' नाम (माया) का नाश असम्भव ही है ॥७॥

स्वस्य लावण्यमाधुर्यपोषकश्चानुवर्त्तिनाम्।
नितरां शाठ्यहर्त्ता च धाता सर्वभयापहः ॥८॥

शब्दार्थ=स्वस्य—अपने या निज। अनुवर्त्तिनाम्-आज्ञानुवर्त्ती या अनुगामी जनों को। लावण्यमाधुर्यपोषकः-अपने सौन्दर्यमाधुर्यादि से पालन करने वाले (श्रीचरणारविन्द हैं)। च-पुनः। नितराम्-पूर्णतया। शाठ्यहर्त्ता-शठता (कपट आदि दोषों) के हरने वाले। धाता-चक्ररूप से श्रीमथुरापुरी के धारण कर्त्ता। सर्वभयापहः-(तथा) सर्व क्लेश नाशक भी आप ही हैं ॥ ८ ॥

टीका—श्रीमान् आद्याचार्य्य चरणों के स्वजन (अपने अनुवर्त्ती भक्त वृन्द के) पालनकर्त्तृत्वादि गुणगण का बखान करते हुये सादर सप्रेम, हर्षाश्रुपूर्ण नेत्र एवं गद्गद् वाणी से श्रीश्रीनिवासाचार्यजी महाराज स्तुति करते हैं:—

हे कारुण्यमूर्त्ते ! आप अपने सौन्दर्य माधुर्य सौशील्यादि सर्व सद्गुणोंके द्वारा आज्ञानुवर्त्ती (भक्त) लोकों का पालन पोषण किंवा पूर्णरूपेण रक्षा करनेवाले हैं। और उनके शठता-कपट-वञ्चकतादि दोषोंका हरण करनेवाले, सुदर्शन (चक्र) रूप से श्रीमधुपुरी को धारण या रक्षण करने वाले हैं, तथा अविद्या, (अज्ञान-मोह) अहङ्कार, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश (मरण का भय) आदि जीवों के सर्व क्लेश भय किंवा दुःखमात्र को अपहरण-दूर कर सर्व दीन जनोंको सर्व सुख भी प्रदान करने वाले श्रीचरण कमल ही हैं, उन्हीं अखिल दुःखभञ्जन सर्वसुखसदन श्रीचरणयुगलकमलों की सेवा में अगणित वार सा० दं० प्रणाम सह जय जयकार ! हे श्रीचक्राकार, मधुपुर्याधार, सर्वजगदाधार श्रीचरणों के जयकार का प्रचण्ड तुमुल गुञ्जार सर्वत्र सब का मंगलाचारकल्याण करता रहे !! भवदीय-वीथीपथिक शान्त समदर्शन भक्तवृन्ददासानुदास वैष्णवाभास दीन हीन (श्री) राधिकादास की यह केवल यही एक प्रार्थना स्वीकार होगी !!! और सब जन कृतकृत्य

होकर धन्य होंगे ! बोलिये प्रेमसे श्रीआद्याचार्य-श्रीसुदर्शन भगवान् की जय ! जय !! ॥८॥

अमानीमानदो मान्यो भावको भावधारकः ।
सर्वसंशयभेत्ता च सर्वागमविशारदः ।९॥

शब्दार्थ—अमानी-मान=अपमान को समान मानने वाले किंवा मान बड़ाई की इच्छा से रहित । मानद=श्रीकृष्ण-रूप मान सबका सम्मान करने वाले । मान्य=सत्कार के योग्य । भावक=भाव (भक्ति भाव) कर्त्ता । भावधारक=प्रेम-भावपूर्ण हृदयवाले । सर्वसंशयभेत्ता, च=सब सन्देहों के भंगकर्त्ता तथा । सर्वागमविशारदः=सब शास्त्रों के ठीक २ ज्ञाता ॥ ९ ॥

अर्थ—हे श्रीआचार्यवर्य ! आप अपनी मान प्रतिष्ठा की कामना स्वप्न में भी नहीं करते, कहा भी है 'अभिमानं सुरापानं गौरवं घोररौरवम् । प्रतिष्ठा सूकरी × × त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भव । अतः आप सर्व गर्वशून्य अपने को एक दीन भगवदीय मानने वाले अतिशय सुशील, सबको मान सम्मान देने वाले किंवा सबका (यथोचित) आदर करने वाले हैं। दैन्यादि गुणों से युक्त दीन भक्तों पर श्रीकृष्ण कृपा होती है ऐसा आपही ने तो दशश्लोकी-श्रीवेदान्तकामधेनु में श्रीमुख से उपदेश दिया है—

'कृपास्य दैन्यादि युजि प्रजायते यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा ।'

आपही सबके मान्य आदरणीय, वन्दनीय अथवा सबसे सत्कार पाने योग्य हैं। श्रीश्यामसुन्दर सर्वेश्वरकी विविधि मनोहारिणी दिव्य लीलावलीकी नित्य भावना करनेवाले भाव भक्ति अथवा प्रेमरूपा भक्ति को धारण करनेवाले अर्थात् प्रेमाभक्ति ही आपके जीवनका एक मात्र आधार है। श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण करनेसे जीवोंके सर्व संशय सर्व प्रकार की संदेह शङ्कायें (अथवा मोह) ऐसे दूर हो जाती हैं जैसे भगवान् भास्कर के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है। पुनः आप सर्व आगम नाम सब प्रकारके शास्त्र ग्रन्थोंके विचार किंवा शास्त्रार्थ निर्णयमें बड़े दक्ष-कुशल और पण्डित हैं। श्रीचरणों में बारंबार नमस्कार ॥९॥

कालकर्मगुणातीतः सर्वदाचारतत्परः।
श्रीकृष्णस्य कृपापात्रः प्रेमसम्पुटपुष्कलः ॥१०॥

शब्दार्थ—कालकर्मगुणातीतः = काल कर्म और गुणों से परे रहनेवाले। सर्वदाचारतत्परः = सदा सदाचार पालन करनेवाले। श्रीकृष्णस्य = श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी। कृपापात्र = कृपाके अधिकारी। प्रेमसम्पुटपुष्कलः = और आप साक्षात् निरतिशय प्रेममूर्त्ति हैं ॥ १० ॥

टीका—आप श्रीभगवान्के दक्षिण कर कमलमें विराजमान और उनके परम प्रिय आयुध श्रीसुदर्शन के अवतार हैं

अतः श्रीकृष्णके नित्य प्रियपार्षद होने से उन्हींके समान आप काल-मृत्यु कर्मबन्धन और त्रिगुणात्मिका मायासे पर होकर त्रिगुणातीत रूप में विराजमान हैं अर्थात् श्रीचरण, काल-कर्म एवं गुणों के अधीन (वशीभूत) नहीं हो सकते। कारण, बुद्धि जीव ही कालकर्मादि के अधीन रहते हैं।

निरन्तर स्वाचार्यचरणोपदिष्ट (अपने श्रीगुरुदेव द्वारा उपदेश किये हुये) शुभ मङ्गलकारक किंवा कल्याणकर आचार के पालन करने में तत्पर-सावधान रहते हैं। आचाररक्षण करने वाले होने से ही श्रीगुरुदेव की 'आचार्य' संज्ञा होती है।× कहा भी है कि—'धर्ममूलः सदाचारः' अर्थात् सदाचार ही सब धर्मों का मूल कारण है, सदाचार के बिना धर्म का कुछ मूल्य नहीं क्योंकि यह बात सूर्यप्रकाश के समान स्पष्ट है कि सर्वधर्म सदाचार और सत्कर्म में ही प्रतिष्ठित हैं। शुभ आचरणके बिना धर्मकार्य ऐसे ही हैं जैसे विधवाका शृङ्गार। पुनः आप श्रीराधिकारमण श्यामसुन्दर सर्वेश्वर श्रीगोपीमनोहर गोपालकृष्णके कृपापात्र उनकी निर्हेतुक कृपाके अधिकारी हैं अथवा श्रीकृष्णकृपा ही आपका प्राण-जीवन सर्वस्व है, किंवा कृपालुशिरोमणि श्रीगोपालजी ही मेघश्याम हैं जो आपके ऊपर निरन्तर अखण्ड रूपसे निज अहैतुक कृपावारि की वर्षा करते रहते हैं। और परिपूर्ण प्रेम अथवा भक्ति की तो

साक्षात् मूर्ति आपही हैं। आपकी अनन्त अपार गुणावली का वर्णन करने में देवगण भी असमर्थ होंगे अतः श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम करता हुआ आपके जयजयकार करके अतीव हर्षित होता हूँ ॥ १० ॥

तारुण्यं वयसा प्राप्तो न विकारमनाः क्वचित् ।
एतत्सुमहिमा कोऽपि विरलो दृश्यते भुवि ॥११॥

शब्दार्थ—वयसा, तारुण्यं, प्राप्तः = युवावस्था प्राप्त होने पर। क्वचित् = कभी। विकारमनाः = विकारयुक्त मन। न = नहीं होता। कोऽपि = कोई भी। एतत् = ऐसा। सुमहिमा = सुन्दर महिमा वाला। भुवि = पृथ्वी पर। विरलः = बहुत कम। दृश्यते = दिखाई देता है ॥ ११ ॥

टीका—तारुण्य नाम युवावस्था प्राप्त होने पर भी श्रीमान् का मन कभी भी विकारयुक्त कलुषित नहीं होता कारण श्रीहरि के परम प्रिय पार्षद होने से आप नित्य पूर्णकाम हैं, अर्थात् आपकी सर्व इच्छायें नित्य परिपूर्ण हैं, आपकी कोई इच्छा कामना अपूर्ण नहीं! अतः कामना बिना मनमें विकार होना सम्भव नहीं। मनको निर्विकार रखना अतिशय दुष्कर कार्य है। अर्जुन ने श्रीभगवान् से मनकी चञ्चलता, दुर्निग्रहता और बलवत्ता आदि का वर्णन करते हुये पूछा कि 'हेश्रीकृष्ण! मनका वश में करना तो ऐसा ही दुःसाध्य है जैसा वायुको बाँध रखना'। उत्तर में श्यामसुन्दर बोले—हे अर्जुन!

निःसन्देह मनकी चञ्चलता आदि मैं स्वीकार करता हूँ किन्तु अभ्यास और वैराग्य से मनको स्वाधीन या वश में किया जा सकता है। इससे सिद्ध हुआ है कि निर्विकार शुद्धमना होनेसे आपका अभ्यास और वैराग्य पूर्ण परिपक्व अवस्था में पहुँचा हुआ है। अस्तु, तरुणावस्था में भी शुद्ध और निर्दोष मनवाला व्यक्ति खोजने पर भी मिलना दुर्लभ है अतः कहते हैं कि ऐसी अद्भुत सुन्दर महिमा-महत्त्ववाला श्रीभगवद्भक्त पृथिवी पर विरला ही दीखता है। ऐसे महामहिमान्वित श्रीचरणोंमें बारंबार नमस्कार है॥ ११॥

किं दुरापादनं तेषां कृष्णमार्गानुवर्त्तिनाम्।
असिद्धमपि सिद्धं स्यात्तत्कृपापाङ्गवीक्षणैः॥१२॥

शब्दार्थ—कृष्णमार्गानुवर्त्तिनाम्=श्रीवैष्णव धर्मके अनुयायी। तेषाम्=उन पुरुषोंके। किम्=क्या। दुरापादनम्=दुर्लभ है। तत्कृपापाङ्गवीक्षणैः=श्रीकृष्णकी कृपापूर्ण दृष्टिसे। असिद्धम्=असिद्धकार्य। अपि=भी। सिद्धम्=पूर्ण। स्यात्=हो जाता है॥ १२॥

टीका—श्रीकृष्णपथ के पथिक—श्रीभागवत धर्म के अनुयायी वैष्णवजनों को त्रिलोकी की कौन वस्तु दुर्लभ है अर्थात् श्रीकृष्णभक्तों को सर्व पदार्थ नित्य सुलभ हैं! प्रथम तो श्यामसुन्दर सर्वेश्वर श्रीगोपालकृष्ण के प्रिय भक्तवृन्द स्वभावतः

निष्काम होने से प्रेम अथवा प्रेमस्वरूप श्रीराधिकाकृष्ण के कमलकोमल महाशान्तिदायक अति सुन्दर युगलचरणारविन्द के अतिरिक्त किसी वस्तु की कामना ही नहीं करते, कदाचित् कश्चित्कारणवशात् परोपकार आदि के लिये किसी वस्तु की कोई इच्छा हो भी जाय तो श्रीप्रभु उसी समय उसे पूरा करते हैं उनके प्यारे प्रेमियों के लिये कुछ भी अप्राप्य या असाध्य नहीं रहता, श्रीकृष्णभक्त सर्व जगत् के स्वामी होते हैं ऐसा समझना चाहिये। भगवद्भक्तों के लिये कोई वस्तु दुःसाध्य दुर्लभ नहीं होती इसमें हेतु दिखाते हैं कि "असिद्धमपि सिद्धं स्यात्तत्कृपापाङ्गवीक्षणैः।" श्रीगोपालजी की कृपादृष्टि से, उनकी अनन्त प्रेमभरी कृपापूर्ण चितवन मात्रसे लोकों के प्रसिद्ध अपूर्ण अधूरे कार्य भी अनायास बिना परिश्रम सहजही पूर्ण-सिद्ध हो जाते हैं! अस्तु।

तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्णमार्गानुगामी भक्तवृन्द के लिये भी जब कुछ भी दुःसाध्य नहीं है तो आपके सम्बन्ध में क्या कहना? कारण, आपतो साक्षात् श्रीसुदर्शन भगवान् का ही रूप हैं। श्रीकृष्णाज्ञासे जीवोंको श्रीकृष्णमार्ग दिखाकर उनका उद्धार करने के लिये ही कृपा परवश हो आपने श्रीहस्तकमल से पृथक् हो पृथ्वी पर पुरुष (मनुष्य) रूप धारण किया है। कहा भी है कि 'जिन पुरुषों ने सर्वदुःखनाशक श्रीकृष्णचरण-कमलों की शरण ग्रहण करली उनके लिये क्या दुःसाध्य-दुर्लभ है।'

अतः श्रीकृष्णकृपासे तरुणावस्था में निर्विकारमनादि दुर्लभ गुण आपकी महामहिमा को बढ़ाते हुये भी क्या आश्चर्य का स्थान हो सकते हैं ? श्रीकृष्णकृपाप्राप्त आपके कमलकोमल चरणयुगलमें सप्रेम अनन्त नमस्कार ॥ १२ ॥

त्यक्तसर्वदुराचारः कृष्णचर्यापरिग्रहः ।
भावनाशुद्धसर्वत्र पक्षपातविवर्जितः ॥१३॥

शब्दार्थ—त्यक्तसर्वदुराचारः = सब दूषित आचरणोंको छुड़ानेवाले । कृष्णचर्यापरिग्रहः = श्रीकृष्णपूजन ही आपका परिग्रह (निर्वाहार्थ वस्तुग्रहण) है । भावनाशुद्धसर्वत्र = शुद्ध-सात्त्विकभावनावाले सर्व जीवोंकी रक्षा करनेवाले । पक्षपात-विवर्जितः = तथा पक्षपातसे रहित भी आपही हैं ॥१३॥

टीका—सर्व जीवों पर श्रीनिम्बार्क भगवान्की अहैतुकी दयाका दिग्दर्शन कराते हुये श्रीभाष्यकारजी उनकी प्रेमविह्वल-हृदयसे स्तुति करते हैं—हे परम दयालु श्रीमदाचार्यवर्य ! आप अपनी स्वाभाविक दयाके कारण काम-क्रोध-लोभादिग्रस्त मायामोहित दुराचारी संसारी जीवोंके सब दूषित-निन्दित आचरणों या पापकर्मोंको छुड़ानेवाले हैं । सब दुराचरणोंकी जड़ एवं जीवात्मा का नाश करनेवाले, नरक के तीन प्रकार के द्वार—काम, क्रोध और लोभ ही हैं । अतः इन तीनों का त्याग

करना चाहिये । स्वयम् भगवान् श्रीकृष्ण भी यही उपदेश करते हैं—

"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥"
श्रीमद्भगवद्गीता अ० १६॥

सर्वेश्वर श्यामसुन्दर—श्रीकृष्णका पूजन ही आपका सर्वस्व धन है। श्रीसर्वेश्वरपूजनके अतिरिक्त आप अन्य सब पदार्थों का त्याग करते हैं। अर्थात् श्रीगोपालकृष्णकी सेवा-परिचर्या के अतिरिक्त और किसी वस्तुका परिग्रहण भी नहीं करते, अत्यन्त विरक्त होने के कारण आपको अन्य वस्तुका परिग्रह करने (लेने) की आवश्यकता भी नहीं है। पवित्र-भावना या निर्मल अन्तःकरणवाले सर्व जीवोंको अपनी सुखप्रद चरण-शरण में लेकर आप उन पर अनुग्रह करनेवाले हैं। अयि श्रीआचार्यवर्य, पक्षपात अर्थात् (किसी का पक्ष ग्रहण करके अन्य पक्ष को परास्त करनेका प्रयत्न) आप कभी नहीं करते, कारण पक्षपात करनेसे व्यर्थका वितण्डा ही बढ़ता है और उससे उभयपक्षमें मनोमालिन्य होजानेकी भी बहुधा सम्भावना रहती है। अतएव शास्त्रोंमें विरक्त महात्माओंके लिये विशेषरूपसे पक्षपातसे प्रथक् रहनेका उपदेश दिया गया है। श्रीमद्भागवते यतिधर्मनिरूपणप्रसङ्गमें कहा है कि यति को उचित है कि किसीका कभी भी पक्षपात न करे और

वृथा वितण्डे-बखेड़ेसे सर्वदा दूर रहे। 'भावनाशुद्ध ! सर्वत्र' ऐसा परिच्छेद करनेसे यह अर्थ होगा कि हे सर्वत्र भावनाशुद्ध श्रीमदाचार्यवर्य (सब स्थानों में स्वर्गसुखसे अधिक सुखसाधन-प्राप्तिके स्थानों में उद्दीपक सर्वसामग्रीयुक्त साधारण जीवोंकी भावनाको तुरन्त विकारयुक्त बना देनेवाले स्थानोंमें हावभाव कटाक्षपात आदि करती हुई रम्भा उर्वशी आदिके सन्निकट भी आपकी भावना (मन की वृत्ति) नित्य पवित्र रहती है। अतः आप कदाऽपि किसीका पक्षपात नहीं करते, श्रीचरणोंके भाषण आदि सर्व कार्य पक्षपात रहित ही होते हैं। (श्रीनिम्बार्क भगवान्के पक्षपातविवर्जित होनेका प्रबल प्रमाण उनके ब्रह्मसूत्रवाक्यार्थ 'वेदान्तपारिजातसौरभादि' ग्रन्थरत्न भी हैं) ॥ १३ ॥

सत्यवाक् सत्यसङ्कल्पः कृतसिद्धान्तनिर्णयः।
वृद्धसेवी वृद्धिकर्त्ता भर्त्ता सर्वस्य पालकः ॥१४॥

शब्दार्थ—सत्यवाक्=सत्यवादी। सत्यसङ्कल्पः=सत्य-सङ्कल्पवाले। कृतसिद्धान्तनिर्णयः=सत्यसिद्धान्तका निर्णय करनेवाले। वृद्धसेवी=गुरुजनोंका सेवन करनेवाले। वृद्धिकर्त्ता=भक्त्यादिकी वृद्धि करनेवाले। भर्त्ता=भक्ति ज्ञानादि धारणकर्त्ता। सर्वस्य=सबके। पालकः=रक्षक आप हैं॥ १४॥

टीका—पक्षपात न करनेके कारण आप नित्य सत्य एवं हितकर और श्रुतिमधुर अथवा माधुर्यरससे परिपूर्ण सुकोमल वाणी (भाषण) द्वारा सर्व जीवोंके कल्याणसाधनमें तत्पर रहते हैं। श्रीमनुजीमहाराजका वाक्य है—

"सत्यम्ब्रूयात् प्रियम्ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्म्मः सनातनः।"

अर्थात् सत्य और प्रिय मधुर भाषण करना चाहिये, सत्य अप्रिय हो तो न बोले और अनृत-मिथ्या या असत्य प्रिय हो तो भी झूठ न बोले, किसी को प्रसन्न करने के लिये मिथ्या भाषण न करे, यह सनातनधर्म है।" सत्य भाषणद्वारा आप सनातनधर्मकी रक्षा करते हैं। आपके सर्वसङ्कल्प सदा पूर्ण होते हैं, अतः आप सत्यसङ्कल्प हैं। और हे श्रीगुरुचरण! सर्ववेदशास्त्रपारङ्गत होनेसे आपने ही यथार्थ सिद्धान्तका (ईश्वर और जीवजगत् के स्वाभाविक भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत नामक वेदान्तसिद्धान्तका) वेदश्रुतिप्रमाणद्वारा निश्चित निर्णय किया है। यद्यपि उक्त द्वैताद्वैत सर्ववेदसम्मत होनेसे अनादिसिद्ध वेदान्तका सिद्धान्त है, तथाऽपि श्रुतियोंका क्रमबद्ध प्रमाणसंग्रह करके उसे (भेदाभेद सिद्धान्तको) निश्चित स्वरूप में लाकर विशेषरूपसे प्रचार करनेका श्रेय आपहीको प्राप्त है। इस द्वैताद्वैतसिद्धान्तमें विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैत एवं अद्वैत आदि अन्य सम्प्रदायसम्मत प्रायः समस्त सिद्धान्तों का

अन्तर्भाव समावेश हो जाता है, यह उक्त द्वैताद्वैतकी सबसे बड़ी एक अपूर्व विलक्षण विशेषता है। विशिष्टाद्वैत आदि अन्य सिद्धान्त किस प्रकार द्वैताद्वैतमें विलीन या सन्निविष्ट हो सकते हैं, इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा। द्वैताद्वैत शब्द पर विचार करने से ज्ञात होगा कि द्वैत और अद्वैत, दोनों प्रकार के सिद्धान्तोंका समावेश द्वैताद्वैत सिद्धान्तमें सहज स्वाभाविक-रूपसे हो जाता है। अस्तु, आप स्वकीयाचार्यवर्य देवर्षि श्रीनारद भगवान् आदि वृद्ध-गुरुजनों का संसेवन करनेवाले हैं तथा भक्ति ज्ञानादिकी वृद्धि या उन्नति करते हुए उन (ज्ञान वैराग्यादि) को धारण करनेवाले एवं भक्त्यादिकी कृपासे ज्ञानादिद्वारा आप इस संसारका पालन-रक्षण करते हैं, अतः आप धन्य हैं। श्रीचरणों में अनन्तकोटि साष्टाङ्गप्रणाम कर कृतकृत्य कृतार्थ होता हूँ। आपकी सदा जय! जय!! जय!!! ॥ १४ ॥

मन्दानां शाठ्यनिर्हृत्या सर्वसौभाग्यदायकः।
आचारवैरिणोहन्ता कार्यसिद्धिप्रदायकः ॥१५॥

टीका—मन्द बुद्धि-दुष्ट स्वभाव जीवों के शठतादि दुर्गुणोंको दूर करके सम्पूर्ण सौभाग्य सुखके देनेवाले, सदाचारविरोधी अधर्मोंका नाश कर भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेवाले और दुष्ट दैत्यों का हनन कर शौनकादि अट्ठासी सहस्र ऋषियों के यज्ञादि सत्कार्योंको सफल करनेवाले आपके श्रीचरणोंकी धन्यताका वर्णन कौन कर सकता है ॥ १५ ॥

आचारभ्रष्टजीवानां शनैर्युक्त्या प्रबोधयन्।
भगवन्मार्गशुद्धया च कृतार्थीकृतभूतलः ॥१६॥

टीका—आचार अर्थात् सदाचाररहित जीवों को शनैः शनैः उन (असदाचारी जीवों) की बुद्धिमें समाने योग्य युक्तियों से शास्त्रीय आचार-विचार की शिक्षा देकर उनकी बुद्धि शुद्ध कर, उसमें ज्ञानयुक्त प्रभुप्रेम का प्रादुर्भाव करनेवाले श्रीचरणों की बलिहारी। भगवद्गुणगान, श्रीकृष्णके क्षमा, दया, वात्सल्यादि गुणोंका श्रवण कराकर समग्र भूतलको कृतकृत्य अर्थात् अपने आश्रित जनोंको कल्याण साधनामें लगाकर उनका जन्म सफल करनेवाले श्रीमदाचार्यपादपद्मोंको मधुकर की नाईं सेवन करना हम सबका परम कर्त्तव्य है, क्योंकि एक मात्र श्रीगुरु-कृपा से ही सर्वकार्य सिद्ध होते हैं—"गुरोः कृपा हि केवलम्" ॥ १६ ॥

हतलोकोऽयमज्ञः स्यात् वर्तमाने विभावसोः।
आचार्यरूपिणः सम्यक् जाड्यशीतेन दाह्यते ॥१७॥

टीका—श्रीभाष्यकार महाराज भगवद्विमुख विषयासक्त मनुष्यों को कृपावशतः बारम्बार चेतावनी देते हुए श्रीमदाद्याचार्यपाद का महोत्कर्ष प्रदर्शित करते हैं। अज्ञानान्धकारनाशक श्रीगुरुरूप अर्थात् श्रीमान्के चरणाम्बुजका आश्रय किये विना वर्तमान

समयके हतभाग्य लोक पूरे मूर्ख बने रहेंगे और इसी कारण जड़ता रूप जाड़ेसे संतप्त हो दुःखभोगके अतिरिक्त उन अज्ञानियोंकी अन्य कोई गति नहीं हो सकती। अतः स्मरण रहे कि दुर्लभ मनुष्य देह पाकर श्रीगुरु-शरण न ग्रहण करनेवाले जीव कल्याण मार्गके पथिक न होनेसे कृतघ्नी आत्मघाती हैं।१७।

सत्यवाक्यञ्च शृणुत त्यक्त्वा तर्कवितर्कताम्।
आचार्यशरणं यात कलौ निस्तारहेतवे ॥ १८ ॥

टीका—संसारासक्त जीवोंको उद्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम लोग आत्मघाती मत बनो, किसी प्रकार मनको समाहित कर कुतर्कजालको तोड़ हमारी सत्य बात और मनुष्य जन्म सफल करनेका एक मात्र उपाय ध्यान देकर सुनो, इस घोर कलिकाल में अपना कल्याण-साधन करना चाहते हो, तो श्रीगुरुदेव के चरण-कमलों का आश्रय करो, अन्यथा दूसरे उपायों से तुम संसार-चक्र से कभी नहीं छूट सकते—

"गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई। जो बिरिञ्चि शङ्कर सम होई॥"

और भी कहा है—"इन्द्रियों के थपेड़े से व्याकुल चञ्चल मनको वश में करने की इच्छावालों की नाव श्रीगुरुचरणोंकी कृपा के बिना केवटरहित नौकाकी भाँति मध्यधारमें डूबी समझो ॥ १८ ॥

भक्तानुग्रहकर्ता च सर्वसौख्यप्रदः शुभः।
बालबोधी कृपादृष्टिनिर्वृत्तरहितः परः ॥१९॥

श्रीमान् के अनुपम कृपागुणका कहाँ तक बखान करूँ। श्रीकृष्णभक्तों पर तो आप स्वाभाविक रूप से नित्य अनुग्रह करते ही हैं, साथ ही सबको नित्य सुख देनेवाले भी हैं। श्रीगुरु-कृपासे ही जीवोंको नित्य परमानन्दकी प्राप्ति हो सकती है। 'गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्पूर्णः प्रशान्तये।" शुभ नाम साक्षात् मङ्गलमूर्ति किंवा श्रीकल्याणराय ही मूर्तिमान् विराजमान हो रहे हैं। बालबोधी-अज्ञानियों को ज्ञान-दान देनेवाले, दृष्टिमात्र से सबका मङ्गल करनेवाले परिग्रह या संग्रह न करनेवाले सर्वश्रेष्ठ किंवा परतत्त्वरूप आपकी जय हो ॥ १९ ॥

आकरो भक्तिमार्गस्य भेदरत्नसमन्वितः।
अनन्तभावभक्तिज्ञ लभ्यतेऽत्र समाहितः ॥२०॥

टीका—भक्तिके उत्पत्ति-स्थान भक्तिमार्गकी खानि अर्थात् श्रीकृष्णभक्तिके अखूट भाण्डार अपूर्व भक्तिप्रचारक, ईश्वर और जीवका स्वाभाविक भेदसम्बन्ध है। उस रत्न-रूप भेद से समन्वित-युक्त तथा भक्ति के अगणित विभाव अनुभाव आदि असंख्य सर्व भावोंको सम्यक् समझनेवाले और सब प्रकारके भक्तिभाव में सावधान रहनेवाले श्रीचरणोंमें नमो नमः ॥ २० ॥

स्वार्थहीनः परार्थी च महोदारो दयानिधिः ।
यौवनैश्वर्यसामग्री येन विष्णौ निवेदिता ॥ २१ ॥

आप पांचों प्रकारके अर्थ अर्थात् विषयोंसे हीन होते हुए भी परार्थी नाम अन्य सर्व जीवोंका उपकार करनेवाले हैं तथा बड़े उदार एवं दयाके पारावार (दयासागर) हैं। आपकी अनुपम उदारता दिखाते हैं कि श्रीमान् ने युवावस्था श्रीकृष्ण चरणोंकी सेवामें समर्पण करदी तथा ऐश्वर्य सामग्री भी श्री गोपालजीके चरण कमलोंमें निवेदित या अर्पण कर दी ॥ २१ ॥

आचार्यो विष्णुरूपो हि पुराणेष्विति निर्णयः ।
निग्रहानुग्रहाभ्यां वै श्रीकृष्णेन समानता ॥ २२ ॥

श्रीमान् आचार्यवर्य श्रीकृष्णरूप ही हैं ऐसा श्रीमद्भागवत और पद्मपुराणादिकों में स्पष्ट निर्णय किया गया है, "आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत कञ्चन। न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्व देव मयो हि सः।" एकादशस्कंधमें श्रीकृष्णका वाक्य है— 'श्रीगुरुदेवको साक्षात् श्रीकृष्णरूप जाने और उनकी कभी अवज्ञा न करे, श्रीगुरुकी मनुष्यबुद्धिसे कभी टीका भी न करे क्योंकि निश्चय ही वह सर्व देवमय हैं। श्रीगुरु शिक्षा करने एवं अनुग्रह करनेमें समर्थ हैं अतः उनको श्रीकृष्णतुल्य पूज्य आदरणीय माना गया है।

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रसाद्यः सर्वदेहिनाम् ॥ २३ ॥

अपने कृपाप्रसादसे दुष्कर्म व पापो से छुड़ा कर भगवदभिमुख करके जीव को बचा लेते हैं। श्रीहरिके रुष्ट या रूठ जाने पर श्रीगुरु महाराज रक्षा करनेवाले होते हैं। श्रीगुरु के रूठने या असन्तुष्ट होनेसे ब्रह्मादिक भी नहीं बचा सकते इसलिये प्रत्येक उपायसे सब जीवोंको किंवा मनुष्य मात्रको उचित है कि सब प्रकार से श्रीगुरुदेव को प्रसन्न-सन्तुष्ट रखना चाहिये ॥ २३ ॥

आचार्ये मानुषी बुद्धिर्न कर्त्तव्याकदाचन।
अस्माभिः श्रेय इच्छद्भिर्यतः स्थानं हि श्रेयसाम् ॥२४॥

श्रीगुरुदेवको कभी भी साधारण मनुष्य बुद्धिसे नहीं देखना चाहिये, कारण, श्रीमान् आचार्य देव ही पूर्णतया कल्याण करनेवाले होते हैं 'यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदेगुरौ। मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्।' अर्थात् सर्वोत्तम ज्ञान देनेवाले साक्षात् भगवद्रूप श्रीगुरुदेव में जिसकी मनुष्य बुद्धि होती है उसके सब कर्म धर्म हाथीके स्नानके समान व्यर्थ-निरर्थक हैं। इति विष्णुपुराणे। श्रीगुरुको साधारण मनुष्य समझनेवाला नरकमें जाता है, ऐसा शास्त्रका वचन है अतः अपना कल्याण चाहने वालोंको चाहिये कि श्रीगुरुदेव में मनुष्यबुद्धि कभी न करे ॥ २४ ॥

यस्मिन्नहनि यर्ह्येव करोति कृपयाऽऽत्मसात् ।
तर्ह्येव सर्वसिद्धिः स्यान्न काङ्क्षा तिथिवारयोः ॥२४॥

'श्रीगुरुदेवकी कृपा बिना विघ्नके सबको अखण्ड शान्तिसुखरूप सिद्धि किंवा परमानन्द प्रदान करनेवाली होती है' इस बातको सूचित करते हुये स्तुति करते हैं—श्रीगुरुदेव जिस दिन एवं जिस समय कृपापूर्वक शिष्यको उपदेश करके निज चरणों की शरण में ग्रहण करते हैं उस ही समय सर्वसिद्धि अथवा नित्य शान्ति सुख प्राप्त होता है, इसमें शुभाशुभ मुहूर्त्त तिथि वार आदि देखनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥ २४ ॥

पञ्चसंस्कारदायी च ममोद्धर्त्ता भवार्णवात् ।
तेषां प्रत्युपकारार्हो नकोऽपि जगतीतले ॥ २६ ॥

शंख चक्रका चिह्न, ऊर्द्ध्वपुंड्र तिलक एवं मंत्र आदि पांच संस्कारोंका दान करके व्रत अनुष्ठानादिका उपदेश करने वाले तथा संसार सागर से मेरा उद्धार करनेवाले आपकी कृपा का प्रत्युपकार या बदला चुकानेवाला एक मैं तो क्या जगत् भरमें कोई भी नहीं दीखता। एकादशस्कंधमें कहा है कि ब्रह्मा की आयु या सहस्रों युगोंमें भी, जीवोंके सम्पूर्ण अशुभ संस्कारोंका नाश करके उनका परमकल्याण साधन करनेवाले आचार्यदेवका प्रत्युपकार बड़े बड़े पंडित कवियोंसे भी नहीं हो सकता ॥ २६ ॥

कश्मलक्रोधग्रस्तोऽहमविद्याग्रन्थिपीड़ितः ।
मामुद्धर जगन्नाथ चिरकालस्य दुःखिनम् ॥२७॥

दुष्ट जीवोंके कामक्रोधादि विकारोंकी अपने अन्दर सम्भावना करके उनसे छुड़ानेकी प्रार्थना करते हैं:—मेरा मन मलिन क्रोधादि दोषोंसे भरा हुआ है और अविद्यारूप अहङ्कार की गांठसे पीड़ित हो रहा हूँ। इस प्रकार बहुत कालसे दुःख पाते हुये मेरा उद्धार या रक्षा हे जगन्नाथ आपही कीजिये क्योंकि आप सर्व जगत् का उद्धार करनेकी सामर्थ्य रखते हैं ॥ २७ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि त्वत्तोऽन्यन्न हि दैवतम् ।
सर्वे स्वार्थ-परिभ्रष्टा दृश्यन्ते जगतीतले ॥२८॥

हे गुरुदेव ! मेरे सर्वस्व आप ही हैं, आपके श्रीचरण-कमलोंको छोड़कर अन्यत्र कहाँ जाऊँ । आपके चरणारविन्द की कृपा विना किसी भी साधनसे मेरा अथवा अन्य जीवोंका कल्याण नहीं हो सकता अतः अन्यत्र जाकर क्या करें, कारण आपके अतिरिक्त दूसरा कोई पूजनीय सेवनीय नहीं है । (दूसरे ब्रह्मादिककी आराधनासे भी तुम्हारा कल्याण हो सकता है, ऐसा नहीं) क्योंकि इन्द्रादिक सब देवता कर्मसे व्याकुल होनेके कारण किंवा दिव्य भोगसुखमें भूले रहनेके कारण स्वार्थ नाम श्रीकृष्णभक्तिसे परिभ्रष्ट-विमुख रहते हैं, इसलिये वे जीवोंका कल्याण नहीं कर सकते ॥ २८ ॥

अनन्यशरणत्राता रक्षकः शरसम्मतः ।
निरयक्लेशसन्त्रस्त आगतोऽस्मि तवान्तिके ॥२६॥

हे श्रीमान् आप अपनी शरणमें आये हुये जीवों की रामबाण के समान शीघ्रतापूर्वक रक्षा करते हैं अर्थात् (श्रीगुरो) शरणागतोंको अपार संसारसागरसे उद्धार कर देते हैं अथवा स्वयम्भू वेदोंके समान जीवरक्षक हैं। श्रीजगद्गुरु निम्बादित्य प्रभो ! श्रीभगवद्विमुख जीवोंको भक्तिहीनोंको नारकीय यंत्रणा सहन करना पड़ती है इससे भयभीत होकर मैं श्रीचरणोंकी शरणमें आया हूँ। त्राहि माम् ॥ २६ ॥

वेदनां गर्भसम्बन्धं नाशनामि त्वदनुग्रहात् ।
तथा साधय मां देव पाहि पाहि कृपानिधे ॥३०॥

हे श्रीआचार्यदेव ! आपके अनुग्रह या कृपाप्रसादसे गर्भसम्बन्धी वेदना अर्थात् जन्मसमयके दुःखों तथा मरण क्लेशादिकोंको मैं नहीं भोगूँ इसी प्रकारकी साधना कृपा करके सिखाइये, हे कृपासागर रक्ष माम्, जन्मादि दुखों से मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

यदि श्रीमान् ऐसी आज्ञा करें कि मेरे (श्रीगुरुके) सेवन पूजनसे ही सर्व क्लेशोंका नाश हो जायगा, तहाँ अति आतुरतासे करबद्ध होकर बालभाव और सुमधुर वाणीमें प्रार्थना करते हैं—

विध्यविधी न जानामि न जानामि त्वदर्चनम् ।
स्वीयानुग्रहभावेन मनःकामं प्रपूरय ॥ ३१ ॥

हे पतितपावन प्रभो, हे गुरुवर्य ! मैं विधिनिषेध-शास्त्रकथित आचारविचारादि कुछ नहीं जानता अतः आपकी सेवा-पूजाविधीसे अनजान होनेके कारण श्रीचरणोंका अर्चन-सेवन भी नहीं कर सकता इस कारण हे दयासागर निज जनों अथवा स्वचरणाश्रित जनोंके प्रति आपका जो स्वाभाविक अनुग्रहभाव-दयाभाव है, उस अनुग्रहभावके द्वारा स्वकीय जनों की मनःकामना श्रीकृष्णप्राप्ति की अभिलाषा परिपूर्ण कीजिये ॥ ३१ ॥

नियताचारहीनोऽहं कामुको लोभलम्पटः ।
नियमानन्ददासोऽयमित्याकर्ण्य गिरां प्रभो ॥३२॥

यथा न लज्जसे धीमन् तथा सम्पादय क्रमात् ।
तवावतारो भूतानां लोकद्वयविधायकः ॥३३॥

हे सर्वशक्तिमान्, मैं सन्ध्यावन्दन और नित्य हवनादि कर्मसे रहित होनेसे आचारहीन हूं और काम लोभादि से हतबुद्धि हो रहा हूँ इस कारण 'यह (मैं) श्रीनियमानन्दजी का दास है' ऐसी वाणी सुनकर (मेरी अयोग्यता के कारण) आप लज्जित न हों ऐसा उपाय कीजिये अर्थात् हे प्रभो ! आप कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्त्तुं अर्थात् सर्वसामर्थ्ययुक्त हैं और

धीमान्-सर्वज्ञ हैं अतः क्रमशः मेरे दोषोंको दूर करते हुये सन्तोषादि सद्गुण-दीनतादि साधनसम्पत्ति प्रदानकर कृत-कृत्य-अनुग्रहीत कीजिये, आपके लिये कुछ भी असम्भव-अशक्य नहीं है । किञ्च, आपका अवतार ही जीवोंके लोक परलोक सुधारने (उनका सर्वरूपसे कल्याणसाधन करने) के लिये हुआ है, श्रीचरणोंकी जय ! जय ! ॥ ३२, ३३ ॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि विष्णुना प्रभविष्णुना ।
यच्छिरसि स्थितं नाम नियमानन्द इत्यपि ॥३४॥

सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा सर्वविजयी दयासागर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी कृपासे मैं धन्य-कृतकृत्य हो गया क्योंकि सर्वेश्वर श्रीगोपालकृष्णने अपनी स्वाभाविकी कृपासे मेरे ऊपर अनुग्रह करके मुझे अपना लिया है । क्योंकि जो इस 'श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय' में एक बार 'यह निम्बार्कीय' है ऐसा कहने को भी हो जाता है वह भी धन्य हो जाता है, जो निष्ठापूर्वक इस सम्प्रदाय का अनुगामी होकर साधन भजन करे उसके कृतकृत्य होने में क्या सन्देह है ? ॥ ३४ ॥

देवनद्यां समाश्लिष्टः शोभी सर्वाङ्गसुन्दरः ।
निःस्पृहो निर्ममः शान्तः पूर्वाचारसमन्वितः ॥३५॥

देवनदी नाम गोदावरीमें स्नान करनेवाले, शोभा-कान्तियुक्त, मुखारविन्दादि सर्व अङ्ग प्रत्यङ्ग अत्यन्त सुन्दर

अर्थात् आपके अवयवों की शोभा क्या सुन्दरताकी पराकाष्ठा हो गई ! सर्वकामनाशून्य, ममतारहित, एकाग्रचित्त शान्ति-मूर्त्ति-अखण्ड शान्तियुक्त और पूर्वाचार्योंके आचार-श्रीकृष्ण भजनादिमें तत्पर रहनेवाले आपकी जय हो ॥ ३५ ॥

गम्भीरमतिगोस्वामी स्वाश्रयाणां सुखावहः ।
द्वन्द्वातीतस्वभावश्च कार्पण्यहरणोन्मुकः ॥३६॥

अगाधबुद्धिवाले अथवा जितेन्द्रिय किंवा श्रुतियों या गो नाम पृथिवी के स्वामी अपने आश्रित जनोंको सुख देने वाले, शीतोष्णादि द्वन्द्वको सहन करनेवाले, भक्तोंकी कृपणता अर्थात् इन्द्रियदासताजन्य दीनता अजितेन्द्रियता दूर करनेके लिये तत्पर रहनेवाले आपकी जय हो ॥ ३६ ॥

वेदाध्ययनविख्यातः परमार्थपरायणः ।
श्रीकृष्णप्रियदासश्च श्रीकृष्णे कृतमानसः ॥३७॥

वेदपाठका प्रचार करनेवाले, परमार्थ नाम परमपुरुषार्थरूप श्रीकृष्ण ही आपका परमोत्तम अयन-वासस्थान है उनके श्रीहस्तमें आपका निवास है । श्रीश्यामसुन्दरके प्यारे दास और श्रीरङ्गदेवीरूप तथा श्रीकृष्णचन्द्रमें मनको चकोर वत् लगानेवाले आपकी जय हो ॥ ३७ ॥

वैष्णवैः श्लाघनीयश्च वैष्णवानाम्प्रियङ्करः ।
वैष्णवप्रियसर्वार्थो वैष्णवैकपरायणः ॥३८॥

साम्प्रदायिक वैष्णवों द्वारा प्रशंसित पूजनीय, वैष्णवों के प्रियकर कार्य करनेवाले, आपके सब अर्थ वैष्णवोंको प्रिय हैं और आप केवल वैष्णव-परायण हैं ॥ ३८ ॥

वैष्णवोद्वेगहारी च सदा वैष्णवदुःखहा ।
शोभाढ्यो वैष्णवाकीर्णः शोभते उडुराडिव ॥३९॥

अम्बरीषादि वैष्णवोंके उद्वेग, घबराहट को दूर करने एवं उनकी रक्षा करनेवाले, सदा वैष्णवोंके दुःखोंका नाश करनेवाले, आप नक्षत्रों से आवृत चन्द्र की भाँति साम्प्रदायिक वैष्णवों से घिरे हुए सुशोभित होते हैं ॥ ३९ ॥

बालो लाल्यस्त्वया स्वामिन् देशकालविमोहितः ।
न जानामि न जानामि कीदृशो महिमा तव ॥४०॥

हे प्रभो ! मैं बालक आपकी दया का पात्र हूँ, देश कालादिके ज्ञानसे रहित आपकी अचिन्त्य अनुपम महिमा कैसी है, सो मैं नहीं जानता ॥ ४० ॥

लघुस्तवेन भो नाथ ! भो आचार्यशिरोमणेः ।
दासोऽयमिति मां ज्ञात्वा भक्तिं देहि पदाम्बुजे ॥४१॥

हे स्वामिन् ! हे आचार्यों में सर्व-श्रेष्ठ ! इस लघुस्तव के द्वारा यह (श्रीनिवास) मेरा दास है, ऐसा जानकर श्रीचरणकमलोंमें भक्ति-प्रेम प्रदान कीजिये ॥ ४१ ॥

इति

श्री श्रीनिवासाचार्य विरचित-

श्रीलघुस्तवराजस्तोत्रं

समाप्तम्

तुलसीमाला-महत्त्व

विष्णुधर्मेभगवान्नाह—

तुलसीकाष्ठमालाञ्च कण्ठस्थां वहते तु यः ।
अप्यशौचो ह्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥१॥

नारदपञ्चरात्रेच—

अशौचे चाप्यनाचारे कालाकाले च सर्वदा ।
तुलसीमालिकां धत्ते स याति परमां गतिम् ॥२॥

ग रुड़े—

तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् ।
पितॄणां देवतानां च कृतेकोटिगुणं कलौ ॥३॥

प्रह्लादसंहितायाम्—

तुलसीदलमालांतु कृष्णोत्तीर्णां तु यो वहेत् ।
यत्र तत्राश्वमेधानां दशानां लभते फलम् ॥४॥

निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
यो वहेच्च नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥५॥

कण्ठलग्ना तु या माला सा तु कण्ठीप्रकीर्त्तिता ।
तस्या धारणमवश्यं कर्त्तव्यं द्विजसत्तमैः ॥६॥

स्कान्देच—

सनिवेद्यैव हरये तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
मालां पश्चात्स्वयंधत्ते स वै भागवतोत्तमः ॥७॥
क्षालितां पञ्चगव्येन मूलमन्त्रेण मन्त्रिताम् ।
गायत्र्या चाष्टकृत्वोच्चैर्मन्त्रितां धूपितां च ताम् ॥८॥

अभिलाषा

[पद]

भजोरे मन श्रीवृन्दावन नाम ।
श्रीआचार्यवर कृपा करिके, दियो है जु निज धाम ॥
ऐसो समय बहुरि न ऐहैं, मिलन युगल अभिराम ।
श्रीनित्यकिशोरी हितु हरिप्रिया, चरण कमल विश्राम ॥१॥

कब ह्वैहै मन राधा-चरण-उपासी ।
जिनके चरण-शरण भयनासी, सहज छुटे यम-फांसी ॥
आचार्यवर कृपा करि दीनों, सखी नाम निज दासी ।
श्रीनित्यसखी हितू हरिप्रिया, पद-पराग 'सुखवासी' ॥१॥

नीचे लिखी पुस्तकें महात्मा श्रीनन्दलालदासजी ने निम्बार्क सम्प्रदायानुयायियों के लाभार्थ छपवा कर प्रकाशित की हैं।

---

(१) श्यामबिन्दु-महिमा [अमूल्य]

(२) श्रीगोपालतापिनी उपनिषद्
पं० श्रीरणछोडशरणदेव विरचित
प्रकाशिका टीका सहित

(३) स्तोत्र रत्नावली व श्रीनिम्बार्क ग्रन्थसूची

(४) वेदान्त कामधेनु

(५) हंसप्रणति स्तोत्र

(६) लघुस्तवराज

(७) तुलसी कण्ठी महत्त्व

प्राप्ति-स्थान—

महात्मा पं० श्रीनन्दलालदासजी,
धीरजलाल की बगीची,
वृन्दावन (मथुरा)